Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

पं. दीनदयाल उपाध्याय का राजनीति में संस्कृति राष्ट्रीय चिन्तन

एसोसिएट प्रोफेसर
डॉ. जगदीश प्रसाद जाटः
स्वः लक्ष्मी कुमारी बधाला गर्ल्स पी.जी. कॉलेज गोविन्दगढ़
चौमूँ (जयपुरम्)

राजनीति में संस्कृति के राजदूत की चिन्तन यात्रा

महात्मा गांधी जी ने कहा था अब कांग्रेस को भंग कर देना चाहिए तथा विचारधारा के आधार पर पृथक-पृथक दल बनने चाहिए। विचारधारा के कारण ही समाजवादियों ने कांग्रेस छोड़ दी थी। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी भी स्वतंत्र भारत के मंत्रीमंडल में प्रथम उद्योग मंत्री थे। 1950 में नेहरू-लियाकत समझौता हुआ। मुखर्जी इसके खिलाफ थे, उन्होंने कांग्रेस सरकार से त्याग पत्र दे दिया। 21 अक्टूबर 1951 में डॉ. मुखर्जी की अध्यक्षता में भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुई। इसके पूर्व डॉ. मुखर्जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मा. स. गोलवलकर से मिले थे। राष्ट्रीयता की अवधारणा के संबंध में दोनों सहमत हुए। श्री गोलवलकर अपने एक आलेख में लिखते हैं जब ऐसा मतैक्य हुआ तब मैंने अपने निष्ठावान एवं तपे हुए सहयोगियों को चुना जो निःस्वार्थी और दृढ़निश्चयी थे, जो नए दल की स्थापना का भार अपने कंधों पर ले सकते थे। इस प्रकार डॉ. मुखर्जी अपनी आकांक्षा भारतीय जनसंघ की स्थापना के रूप में साकार कर सके।"

उन्होंने यह भी लिखा है कि "हम दोनों (डॉ. मुखर्जी और गोलवलकर) ने अपने-अपने संगठन और कार्य क्षेत्र के दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कदम परस्पर विचार विनिमय के बिना नहीं उठाते थे। ऐसा करते समय हम इस बात पर भी ध्यान रखते थे कि एक-दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप या दोनों संगठनों के परस्पर संबंध के विषय में भ्रम उत्पन्न न हो तथा एक-दूसरे पर हावी होने का प्रयत्न न हो।"

श्री गोलवलकर ने जिन निःस्वार्थी व दृढनिश्चयी सहयोगियों को नए दल का कार्यभार ग्रहण करने के लिए मुखर्जी को दिया उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण थे पं. दीनदयाल उपाध्याय | भारतीय जनसंघ का प्रथम अधिवेशन 29, 30 व 31 दिसम्बर 1952 को कानपुर में संपन्न हुआ था। दीनदयाल उपाध्याय इस नवीन दल के महामंत्री निर्वाचित हुए। यहीं से अखिल भारतीय स्तर पर दीनदयाल उपाध्याय की राजनैतिक यात्रा प्रारंभ होती है। अपनी वैचारिक क्षमता को उन्होंने प्रथम अधिवेशन में ही प्रकट किया। कुल 15 प्रस्ताव इस अधिवेशन में पारित हुए, जिनमें से सात अकेले दीनदयाल उपाध्याय ने प्रस्तुत किये। डॉ. मुखर्जी नवनिर्वाचित महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय से पूर्व परिचित नहीं थे। लेकिन कानपुर अधिवेशन में उन्होंने उपाध्याय की कार्यक्षमता, संगठन कौशल एवं वैचारिक प्रगल्भता को अनुभव किया। उस आधार पर उन्होंने यह प्रसिद्ध वाक्य कहा "यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाए तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूं।"

दीनदयाल उपाध्याय का कोई व्यक्तिगत जीवन न था। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जीवन समर्पित प्रचारक थे। भारतीय जनसंघ को अपने जीवन का ध्येय कार्य उन्होंने संघ के स्वयंसेवक के नाते ही स्वीकार किया था । अतः संघ जनसंघ 'के अलावा उनका कोई अन्य सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन नहीं था। वे 17 वर्ष तक जनसंघ के महामंत्री के नाते उसके संगठनकर्ता एवं विचारक रहे।

सिद्धांत एवं विचारों के विषय में गोलवलकर ने मुखर्जी से जिस प्रकार स्पष्ट व आग्रहपूर्वक चर्चा की थी तद्नुसार दीनदयाल उपाध्याय ने प्रथम कानपुर अधिवेशन से ही जनसंघ के कमान संभाल ली थी तथा वैचारिक दृष्टि से जनसंघ के चरित्र को स्पष्ट करने वाला 'सांस्कृतिक पुनरूत्थान' प्रस्ताव उन्होंने रखा था। भौगोलिक अथवा क्षेत्रीय राष्ट्रवाद कल्पना को नकारते हुए उन्होंने कहा ‘‘जनसंघ का मत है कि भारत तथा अन्य देशों के इतिहास का विचार करने से यह सिद्ध होता है कि केवल भौगोलिक एकता, राष्ट्रीयता के लिए पर्याप्त नहीं है। एक देश के निवासी 'जन' एक राष्ट्र तभी बनते हैं जब वे एक संस्कृति द्वारा एक रूप कर दिए गए हों। जब तक भारतीय समाज एक संस्कृति का अनुगामी था तब तक अनेक राज्य होते हुए भी जनों की मूलभूत एकता बनी रही, परंतु जब से विदेशी शासकों ने अपने लोगों के संवर्धन के लिए देश एकात्मता को भंग कर विदेशपरक संस्कृतियों को इस देश में जन्म दिया है तब से भारत की राष्ट्रीयता संकटपन्न हो गयी। अनेक शताब्दियों तक एक राष्ट्र का घोष करते हुए भी भारत में मुस्लिम सम्प्रदायवादियों के द्विराष्ट्रवाद की विजय हुई। देश विभक्त हुआ और पाकिस्तान में गैर मुस्लिमों का रहना असंभव हो गया। दूसरी ओर भारत में मुस्लिम संस्कृति को अलग मान कर उसकी रक्षा और संवर्धन के ब्याज से उसी द्वि-राष्ट्र वाली प्रवृति का पोषण हो रहा है जो राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक हैं। अतः भारत की एक राष्ट्रीयता के विकास और दृष्टिकोण के हेतु यह नितांत आवश्यक है कि भारत में एक संस्कृति का पोषण हो।’’

इसी प्रस्ताव में बिना किसी सम्प्रदाय का नाम लिए उनके भारतीयकरण के लिए समाज से आह्वान किया गया। किन्तु समाज का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य है कि भारतीय जनजीवन के तथा अपने उन अंगों के भारतीयकरण का महान कार्य अपने हाथ में ले जो विदेशियों द्वारा स्वदेशपरांगमुख तथा प्रेरणा के लिए विदेशाभिमुख बना दिए गए हैं। हिन्दू समाज को चाहिए की उन्हें स्नेहपूर्वक आत्मसात कर ले। केवल इसी प्रकार सांप्रदायिकता का अंत हो सकता है और राष्ट्र का एकीकरण तथा दृढ़ता निष्पन्न हो सकती है।"

भारतीय जनसंघ को भारत में अन्य राजनैतिक दलों से पृथक करने वाला यह महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है, कांग्रेस, समाजवादी व साम्यवादी दल, हिन्द मसलमानों की मिश्रित संस्कृति एवं पश्चिमी विचारकों द्वारा प्रस्तुत 'क्षेत्रीय राष्ट्रवाद' तथा 'राष्ट्रीय राज्य' की कल्पना को मानते हुए भौगोलिक और राजनीतिक आधार पर भारतीय राष्ट्रीयता' पर विश्वास करने वाले हैं। मुसलमानों की अलग संस्कृति तथा मजहबी अल्पसंख्यकों के नाते उनके अनेक मजहबीक एवं सांस्कृतिक विशेषाधिकारों के संरक्षण के हिमायती है। दूसरी ओर हिन्दू महासभा मुसलमानों का भारतीय के नाते अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करती। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने इसीलिए हिन्दू महासभा से त्याग पत्र दिया तथा जनसंघ का दरवाजा सभी मजहबों के लिए खोला। उपाध्याय ने मुस्लिम व इसाई के लिए 'हिन्दू समाज' के ही 'अपने उन अंगों' शब्द का प्रयोग किया तथा उन्हें 'भारतीय जनजीवन' का अंग स्वीकार किया है। परोक्षतः यह स्वीकार किया है कि मुस्लिम समाज को पृथक करने में हिन्दू समाज का कोई अपना भी दोष है, जिसे अब ठीक करना चाहिये अर्थात् उन्हें 'स्नेह' व 'आत्मीयता' प्रदान करनी चाहिए। तभी मुसलमानों की साम्प्रदायिकता के समस्या का समाधान होगा। मुसलमानों अथवा इसाइयों की अलग संस्कृति और उसके संरक्षण के विचार को तथा अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक विचार को वे राष्ट्र के लिए विभेदकारी तथा साम्प्रदायिक विचार मानते थे। सभी दलों के घोषणा पत्र में व्यक्त किये गए विचारों पर टिप्पणी करते हुए दीनदयाल ने अपना मंतव्य इस प्रकार प्रकट किया " कांग्रेस, प्रसोपा, स्वतंत्र पार्टी व कम्युनिस्टों द्वारा किया गया विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि इस देश में अल्पसंख्यकों के साथ न्याय नहीं किया जा रहा है। भारतीय जनसंघ इस प्रकार बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक संज्ञाओं को ना तो उचित समझता है तथा ना इस विभाजन को स्वीकार करता है। वह भारत को अखंड, अविभाज्य और एक राष्ट्र समझता है। सम्पूर्ण राष्ट्र की संस्कृति एक है इस बात पर दृढ़ विश्वास और आस्था रखता है कि जनसंघ धर्मों के आधार पर भिन्न संस्कृतियों के कल्पना को स्वीकार नहीं करता। वह तो एक राष्ट्रीय संस्कृति एवं एक देश का सिद्धांत मानता है। इस बात को जानते हुए भी एक ऐतिहासिक और कुछ अन्य कारणों से इस देश के जन समाज का कुछ अंश राष्ट्र जीवन की पुनीत मूलधारा से पृथक हो गया है ओर कुछ अंशों में राष्ट्र विरोधी भी हो गया है। उनका उपचार करने में जनसंघ विश्वास करता है उनकी पृथकतावादी मनोवृति का समर्थन करने के लिए वह कदापि तत्पर नहीं ..... हमारे अनुसार तो राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। राष्ट्रीयता की यह संस्कृतिवादी अवधारणा ही जनसंघ की मौलिकता है। अतः 'केवल लोक कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा तथा 'सेक्युलरवाद' की भौतिकवादी राजनीति जनसंघ की प्रेरणा नहीं

बन सकी, जो कि सामान्यतः पश्चिमी देशों के सभी लोकतांत्रिक दलों का मूलाधार है। इसलिए दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं, "जनसंघ मूलतः संस्कृतिवादी है। संस्कृति की आधारशिला पर हमारा आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक चिंतन खड़ा है।"
दीनदयाल जी ने भारतीय जनसंघ को आकार दिया, विस्तार दिया तथा एक विशिष्ट व्यवहार भी दिया, लेकिन वे परम्परागत अर्थों में राजनैतिक नेता नहीं थे। एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना यहां जरूरी है 1964 में राजस्थान राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ का ग्रीष्मकालीन संघ शिक्षा वर्ग उदयपुर में हो रहा था। अपने बौद्धिक वर्ग में उन्होंने कहा "स्वयंसेवक को राजनीति के अलिप्त रहना चाहिए जैसे कि मैं हूँ।" यह वाक्य पहेली सरीखा था। अतः रात्रि में प्रश्नोत्तर के सत्र में उनसे सवाल पूछा गया, आप एक राजनैतिक दल के अखिल भारतीय महामंत्री हैं, आप राजनीति से अलिप्त कैसे हैं? दीनदयाल जी ने जवाब दिया कि, "मैं राजनीति के लिए राजनीति में नहीं हूँ वरन् मैं राजनीति में संस्कृति राजदूत हूँ। राजनीति का संस्कृति से शून्य हो जाना अच्छा नहीं है।" अतः उनका आग्रह रहता था कि हमें भारतीय जनसंघ को एक संस्कृतिवादी दल के रूप में विकसित करना है।

राष्ट्रीय अखंडता की राजनीति में चिन्तन

अखंड भारत की जिस सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में जनसंघ का जन्म हुआ था उसके कारण जनसंघ की आवाज पहले दिन से ही राष्ट्रीय अखंडता एवं द्वि-राष्ट्र के विचार उत्पन्न हुये, पाकिस्तान-विरोध के मुद्दों को मुखरित करने वाली सिद्ध हुई। आंतरिक मुद्दों में भी जितनी भावात्मकता के साथ जनसंघ ने प्रांतीय, जातीय व भाषिक पृथकतावादों का प्रतिकार किया है उतना अन्य किसी ने नहीं। जनसंघ के इस राष्ट्रवादी आग्रह के पुरोधा दीनदयाल उपाध्याय ही थे। उन्होंने ही एक ऐसा राजनीतिक दल विकसित किया जो सामुदायिक व भौतिक स्वार्थों के आधार पर संगठित अन्य राजनैतिक दलों की तुलना में राष्ट्रीय एकता व अखंडता के मुद्दों को न केवल आंदोलन का विषय बना सका वरन् लोगों को इन मुद्दों पर संगठित कर बलिदान के लिए भी तैयार कर सका।

कश्मीर आंदोलन

भारतीय जनसंघ द्वारा चलाये गये कश्मीर आंदोलन के तीन प्रसिद्ध नारे थे: एक देश में दो विधान - नहीं चलेंगे। एक देश में दो प्रधान - नहीं चलेंगे। एक देश में दो निशान - नहीं चलेंगे।
इसका संचालन मुख्य रूप से जम्मू की प्रजा-परिषद ने किया। 6 मार्च 1953 को डॉ. मुखर्जी ने बिना अनुमति पत्र प्राप्त किये कश्मीर में प्रवेश कर कश्मीर को भारत में संपूर्णत: विलय करवा देने के लिए सत्याग्रह किया तथा अपना बलिदान दे दिया। उपाध्याय ने कश्मीर आंदोलन के लिए देश भर से सत्याग्रही जुटाने और संगठन को तनिमित्त सक्रिय करने में अपनी भूमिका निभाई। कश्मीर प्रसंग पर अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने 'पांचजन्य' के कश्मीर अंक में एक लम्बा लेख लिखा दीनदयाल उपाध्याय आजादी और विभाजन के तुरंत पश्चात् कश्मीर पर किए गए पाकिस्तानी आक्रमण के प्रति भारत सरकार की ढिलाई, कश्मीर प्रसंग पर संयुक्त राष्ट्रसंघ को पंच बनाना, कश्मीर के भविष्य के लिए जनमत संग्रह की बात करना तथा उसे संविधान में अनुच्छेद 370 के माध्यम से विशेष दर्जा देना आदि विषयों में की गई व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक भूलों का सविस्तार वर्णन किया।
इस संदर्भ में यहां एक और घटना उल्लेखनीय है। भारतीय जनसंघ की गैर वामपंथी दल की छवि उभरी थी, अत: अपने आपको दक्षिणपंथी मानने वाली स्वतंत्र पार्टी की यह इच्छा थी कि जनसंघ का स्वतंत्र पार्टी में विलय हो। जनसंघ के भी कुछ लोग इसके समर्थक थे, अतः अनेक विलय वार्ताएं हुईं, चुनावी गठबंधन भी हुए। उसी समय स्वतंत्र पार्टी के महामंत्री मीनू मसानी ने वक्तव्य दिया कि वे जनसंघ की कश्मीर नीति से सहमत नहीं हैं। उनके विचार से पाकिस्तान से इस संदर्भ में वार्ता आवश्यक थी तथा संयुक्त राष्ट्र की मध्यस्थता के भी वे हिमायती है। दीनदयाल उपाध्याय इससे सहमत नहीं थे। उन्होंने जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी का गठबंधन तोड़ दिया और कहा :
"मैं मसानी को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने अपना मंतव्य इन स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया। उनकी इस घोषणा ने हमें चुनाव संबंधी उस समझौते के बंधन से मुक्त कर दिया है जो स्वतंत्र दल के नेताओं की पाक व कश्मीर नीति के कारण हमारे लिए परेशानी का कारण बन गया था यह स्वाभाविक है कि जनसंघ किसी भी ऐसे दल से समझौता न करे जो देश के किसी भूभाग को आक्रमणकारी के हाथ सौंपने का विचार रखता है। अच्छाई-बुराई के लिए हमें श्री मसानी के उपदेशों की आवश्यकता नहीं है। देश की एकता और अखंडता का प्रश्न हमारी श्रद्धा का विषय है। उसकी प्राप्ति के लिए हम कोई भी कसर उठा नहीं रखेंगे।"

गोवा मुक्ति आंदोलन

यह अपने आप में आश्चर्य की बात है कि संसार भर में उपनिवेशवाद का विरोध करने वाली भारत सरकार पर, स्वयं भारत की धरती पर स्थापित पांडिचेरी और गोवा-दमन-दीव पर फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली उपनिवेशवाद के खिलाफ, कार्रवाई करने के लिए दवाब डालना पड़ा। 1952 के प्रथम कानपुर अधिवेशन में ही दीनदयाल उपाध्याय ने इन बस्तियों को मुक्त करवाने का प्रस्ताव रखा था। इस संदर्भ में 2 मई, 1954 को भारतीय जनसंघ ने देश भर में इस विदेशी उपनिवेशवाद के खिलाफ जनजागरण करने और नेहरू पर दवाब डालने के लिए 'विलय दिवस' का आयोजन किया था। इस संदर्भ में इंदौर से वक्तव्य जारी करते हुए उपाध्याय ने कहा :

"भारत ने फ्रांसीसी बस्तियों के निवासियों ने साम्राज्यवादी जाति से मुक्त होने के लिए एक शांतिपूर्ण संघर्ष प्रारंभ कर दिया है भारत सरकार को 'ठहरो व देखो' की नीति छोड़कर भारत के विरूद्ध इन बर्बरताओं का अंत करने के लिए एक शक्तिशाली कदम उठाना चाहिए। तत्काल पुलिस कार्रवाई करने की शीघ्रतिशीघ्र आवश्यकता है।"

9 से 16 दिसम्बर, 1954 को भारतीय जनसंघ ने 'गोवा मुक्ति' सप्ताह का आयोजन किया तथा 14 अप्रैल, 1955 को केंद्रीय कार्यकारी समिति ने भारत सरकार से गोवा मुक्ति के लिए पुलिस कार्रवाई की मांग करते हुए 'गोवा मुक्ति समिति' का निर्माण किया। देश भर में जनसंघ ने गोवा को पुर्तगाल सालाजार शासन से मुक्त करवाने के लिए व्यापक लोक जागरण अभियान छेड़ा। 21 जून, 1955 को डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने बलिदान दिवस के अवसर पर गोवा में जाकर सत्याग्रह करने का निश्चय किया। तद्नुसार भारतीय जनसंघ के सचिव जगन्नाथ राव जोशी के नेतृत्व में 101 सत्याग्रहियों ने गोवा में प्रवेश किया। उनको उत्पीड़न हुआ। मध्यप्रदेश के श्री राजा भाऊ महाकाल व उ.प्र. के श्री अमीरचंद गुप्त का बलिदान हो गया। दीनदयाल जी ने गोवा सत्याग्रह के लिए प्रभूत लेखन एवं देश भर का प्रवास किया। अन्य दलों, विशेषकर समाजवादी दल ने भी, इस सत्याग्रह में भाग लिया; लेकिन कांग्रेस का व्यवहार दुर्भाग्यपूर्ण रहा। गोवा में पुलिस कार्रवाई के लिए सरकार को बाध्य करने तथा भारत की आजादी को पूर्ण करवाने के लिए भारतीय जनसंघ व दीनदयाल उपाध्याय सत्याग्रहपूर्वक सक्रिय रहे और भारत भूमि से उपनिवेशवाद के ये चिन्ह समाप्त हो सके।

बेरूबाड़ी हस्तांतरण के खिलाफ जन अभियान

पश्चिम बंगाल, असम तथा त्रिपुरा के साथ लगती भारतीय सीमा के अंकन के विषय में भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री सर फिरोज खान् नून के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार जलपाईगुड़ी जिले के बेरूबाड़ी यूनियन क्षेत्र को पाकिस्तान को सौपना भारत ने स्वीकार कर लिया। इस प्रसंग की पृष्ठभूमि के बारे में जनसंघ की यह व्याख्या उल्लेखनीय है ।

"1958 में पाकिस्तान कई महीने तक लगातार असम के कूचबिहार जिले तथा त्रिपुरा के सीमावर्ती क्षेत्र में अंधाधुंध गोली वर्षा करता रहा और उसने असम के तुकेर ग्राम तथा त्रिपुरा के लखीमपुर ग्रामों पर कब्जा कर लिया। इसी संबंध में सचिवों के स्तर पर कराची में एक सम्मेलन हुआ जो असफल रहा। बाद में भारत व पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों के बीच वार्ता हुई जिसके फलस्वरूप 10 सितम्बर, 1958 को नेहरू-नून समझौते का जन्म हुआ (समझौते में) तुकेर ग्राम तथा लखीमपुर का उल्लेख भी नहीं किया गया। उन्हें पाकिस्तान के अवैध अधिकार में रहने दिया गया। यह काफी बुरी बात थी; किन्तु प्रधानमंत्री ने इससे भी बुरा काम और किया। उन्होंने पाकिस्तान को ऐसे प्रश्न नए सिरे से खड़े करने की अनुमति दे दी जिनके संबंध में विभाजन के बाद से अब तक कभी विवाद नहीं रहा। उसके अनुसार पश्चिम बंगाल के 24 परगना जिले के इच्छामति नदी का तटवर्ती क्षेत्र जलपाईगुड़ी का बेरूबाड़ी यूनियन तथा कूचबिहार के टापुओं का विनिमय निश्चित किया गया जिसके परिणामस्वरूप भारत को क्षेत्रफल का घाटा हुआ। नेहरू-नून समझौते में इन सभी ब्यौरे की बातों को सरकार द्वारा भारतीय जनता से छुपाकर रखा गया और उनका पता तभी लगा जब पाकिस्तान के प्रधानमंत्री सर फिरोज खान-नून ने पाकिस्तान की राष्ट्रीय सभा में इसकी घोषणा की।" पश्चिम बंगाल की जनता ने इसका बहुत विरोध किया। जनसंघ ने इसके खिलाफ देशव्यापी आंदोलन प्रांरभ किया। पश्चिम बंगाल के विधानसभा तथा विधान परिषद ने सर्वसम्मति से इसके खिलाफ प्रस्ताव पारित किया।

मुख्यमंत्री विधानचंद्र राय ने विधानसभा में कहा "यह समझौता पश्चिम बंगाल की जनता का विश्वास सम्पादन किये बिना किया गया है।" जनमत के दवाब में राष्ट्रपति ने बेरूबाड़ी के हस्तांतरण के प्रश्न को सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति जानने के लिए प्रेषित किया। सारे मामले पर विचार कर सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वसम्मत निर्णय दिया कि "आज की स्थिति में भारत के किसी भी भूभाग को दूसरे देश को सौपना असंवैधानिक है।" इस पर सरकार ने संविधान में नोवा संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। जनसंघ ने लोकसभा के सम्मुख दीनदयाल उपाध्याय के नेतृत्व में विशाल प्रदर्शन की घोषणा की, लेकिन लोकसभा में अपने बहुमत के बल पर सरकार ने यह विधेयक पारित करवा लिया। थोड़े ही समय बाद "चीन ने आक्रमण किया और देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा की गई तथा भारत को अपमानित करने के उद्देश्य से पाकिस्तान ने चीन से गठजोड़ कर लिया। इस नई परिस्थिति में सब लोग आशा करते थे कि अब बेरूबाड़ी को देने का प्रस्ताव समाप्त कर दिया जाएगा। परंतु आश्चर्य है कि हस्तांतरण की कार्रवाई फिर से प्रारंभ की गई तथा वहां के जन विरोध को लाठी चार्ज तथा भारी गिरफ्तारियों के सहारे से दबाया (गया) जा रहा है।"

सरकार के इस व्यवहार से दीनदयाल उपाध्याय बहुत क्षुब्ध हुए तथा उन्होंने नेहरू जी की आलोचना करते हुए कहा, "पंडित नेहरू कितने भी तानाशाह हो सकते हैं, किन्तु हम उन्हें इतना निर्दयी और क्रूर नहीं मानते हैं जो निरंकुश बनने के लिए आवश्यक रहता है, इसके विपरीत उनमें अनेक गुण है। जिन्होंने उन्हें अत्याचारी होने से रोका है। आज परिस्थितियां ऐसी हो गयी हैं कि पंडित नेहरू भारत के भाग्यनिर्माता लगने लगे हैं। यह स्थिति जनतंत्र-प्रेमियों, यहां तक कि पंडित नेहरू के लिए भी अहितकर है।"

कच्छ-करार विरोधी विराट प्रदर्शन

कच्छ-करार से लेकर ताशकंद घोषणा (1965-66) तक की घटनायें जवाहर लाल नेहरू तथा लाल बहादुर शास्त्री की प्रतिरक्षा संबंधी नीतियों का अंतर दर्शाती है। पाकिस्तान को पहली बार भारत की ओर से सैनिक आक्रमण का जवाब सैनिक प्रत्याक्रमण से दिया गया। उपाध्याय इसका विस्तारपूर्वक ब्यौरा देते हुए अपने प्रतिवेदन में कहते हैं :

"फरवरी (1965) में पाकिस्तान सीमा पुलिस ने कच्छ के रण में घुसपैठ प्रारंभ कर दी। 17 मार्च को पाकिस्तान के रेंजर्स ने भारतीय सीमा में 13 सौ गज अंदर आकर कंजरकोट पर कब्जा कर लिया। यह कार्रवाई बढ़ती गई। 25 मार्च को उन्होंने डिंग पर अधिकार कर लिया, जहां भारतीय सीमा पुलिस के थोड़े से सिपाहियों को 6 मील पहले विंगोकोट तक हटाना पड़ा। कच्छ में पाकिस्तान और आगे बढ़ा तथा दिनांक 9 अप्रैल को भारी सेना और तोपों के साथ उसने सरदान चौकी तथा विंगोकोट पर हमला कर दिया। अभी तक भारत सरकार ने भारत सीमा सुरक्षा का भार केवल सीमा पुलिस पर छोड़ रखा था। किन्तु देश का जनमत अधिकाधिक क्षुब्ध हो रहा था। फलतः सेना को कच्छ की सुरक्षा का भार सौंपा गया। सेना ने पहुंचकर पाकिस्तानियों को पीछे खदेड़ना प्रारंभ किया। फलतः दिनांक 14 अप्रैल, 1965 को पाकिस्तान ने युद्ध विराम का तथा विवादों को बातचीत से सुलझाने का प्रस्ताव रखा। भारत ने उसे यह कहकर अमान्य कर दिया कि कच्छ के रण का कोई विवाद नहीं है। तथा जबतक पाकिस्तान कंजरकोट और भारत की संपूर्ण भूमि को खाली करके पीछे नहीं हट जाता, युद्ध विराम नहीं होगा।

"दिनांक 24 अप्रैल को पाकिस्तान ने भारत की सीमा चौकी प्वाइंट 84 पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण ने अमेरकी टैंकों का भी प्रयोग किया। जो कि अमरिका से हुई सैन्य शर्तों के विपरीत था। भारत द्वारा अमरीका की दृष्टि में यह तथ्य लाया गया किंतु अमरिका ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे पाकिस्तान का हौसला बढ़ा और उसने आगे चलकर युद्ध में अमेरिकन शस्त्रों का खुलकर प्रयोग किया।"

"जैसे ही भारतीय सेनाओं ने शत्रु के मुकाबले तथा प्रत्याक्रमण के लिए मोर्चाबंदी की, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विल्सन के अपील पर पहले तो व्यवहार में युद्ध विराम स्वीकार कर लिया तथा बाद में राष्ट्रमंडल में प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में पाकिस्तान के साथ अनौपचारिक बातचीत के परिणामस्वरूप कच्छ के रण के विवाद को पंच-फैसले के सुपुर्द करने का फैसला कर लिया।" यही भारत और पाकिस्तान के मध्य हुआ कच्छ करार था। स्वाभाविक रूप से उपाध्याय पाकिस्तान द्वारा हड़पी हुई भूमि को मुक्त करवाने के पूर्व शास्त्री द्वारा युद्ध विराम को स्वीकार न करने की घटना को आजाद भारत के प्रतिरक्षा के इतिहास में प्रथम अभिनंदनीय घटना मानते हैं, लेकिन 'कच्छ करार' में स्वीकार किए गए पंच फैसले का उन्होंने तीव्र विरोध किया।

इस समझौते के खिलाफ एवं कच्छ रण में सैनिक विजय के पक्ष में भारतीय जनसंघ ने अभूतपूर्व जनजागरण किया। 16 अगस्त 1965 को भारत के इतिहास का वृहद्तम राष्ट्रीय प्रदर्शन श्री बच्छराज व्यास और पं. दीनदयाल उपाध्याय के नेतृत्व में संसद के समक्ष हुआ। भारत ही नहीं, विश्व भर में प्रेस ने इस प्रदर्शन की प्रभावोत्पादकता, अनुशासनप्रियता, विशालता एवं राष्ट्रवादी उत्सह को मान्यता प्रदान की। बीबीसी ने प्रदर्शनकारियों की संख्या अनुमानतः 5 लाख बतायी। भारत के अनेक विरोधी दलों के नेताओं ने इस विशाल रैली को संबोधित किया। इस प्रदर्शन का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने भारत-पाक विदेश मंत्रियों की 20 अगस्त 1965 की पूर्व नियत प्रस्तावित बैठक रद्द कर दी। जनसंघ ने अपने प्रस्ताव में कहा यदि जनता इसी प्रकार क्रियाशील और जागरूक रही तो कच्छ समझौता कोरा कागज मात्र बनकर रह जायेगा।

भारत पाक युद्ध 1965 ताशकंद घोषणा

पाकिस्तान के लिए यह नवीन अनुभव था। अब तक वह समझौतों व अंतर्राष्ट्रीय दवाबों के बल पर सदा लाभ में रहता आया था। 20 अगस्त की बैठक रद्द होने से कच्छ समझौता व्यवहारिक अर्थों में बेकार हो गया था। पाकिस्तान ने कश्मीर में बड़े पैमाने पर घुसपैठिये भेज कर आंतरिक विद्रोह करवाने का प्रयत्न किया, लेकिन भारतीय सेना ने उसे भी विफल करते हुए पाक अधिकृत कश्मीर के उन हिस्सों पर कब्जा कर लिया जहां से घुसपैठिये भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करते थे। 25 अगस्त को भारतीय सेनाओं ने घुसपैठियों के सब मार्ग रोक दिये। उसने युद्ध विराम रेखा को पार कर कारगिल चोटी व हाजीपीर दर्रे पर अधिकार कर लिया।

1 सितम्बर 1965 को पाकिस्तान ने छम्ब सीमा पर टैंकों और तोपों के साथ भारी सेना लेकर आक्रमण कर दिया। अब यह स्पष्ट हो गया कि पाकिस्तान बड़ी लड़ाई की तैयारी कर रहा था। 5 सितम्बर को पाकिस्तान ने अमृतसर पर हवाई हमला किया। 6 सितम्बर को भारतीय सेनायें लाहौर और स्यालकोट की ओर बढ़ी। इन सब घटनाओं का 'आंखों देखा हाल' सरीखा वर्णन करते हुए उपाध्याय ने अपने प्रतिवेदन में कहा, 'जनसंघ जिस रणनीति की मांग कर रहा था, उसका उस दिन आरंभ हुआ।'

6 सितम्बर को लाल बहादुर शास्त्री ने सर्वदलीय बैठक बुलाई जिसमें दीनदयाल उपाध्याय और सरसंघचालक श्री गुरुजी (मा. सं. गोलवलकर) को भी आमंत्रित किया गया था। जनसंघ तथा संघ ने युद्ध प्रयत्नों के साथ अपने , आपको एकरूप कर लिया था। उन्होंने सरकार को हर प्रकार के सहयोग का विश्वास दिलाया। युद्ध के उन दिनों का वर्णन दीनदयाल उपाध्याय बहुत आनंद एवं गौरवपूर्ण शब्दों में इस प्रकार से करते हैं :

"पाकिस्तान के साथ युद्ध का, 22 दिन का, स्वतंत्र्योत्तर भारत के इतिहास में एक गौरवपूर्ण अध्याय है। भारतीय शासन ने एक साहसपूर्ण पग उठाने का निर्णय लिया। सेना और जनता सबने अत्यंत ही उत्साह, लगन, धैर्य, कुशलता और वीरतापूर्वक उस निर्णय का कार्यान्वित किया। इस अवसर पर देश को अपनी शक्ति व कमजोरियों का ज्ञान हुआ। शत्रु और मित्र का पता चला। स्वाभिमान और स्वावलंबन जागा। स्वप्नलोक से उतरकर ठोस जमीन पर चलने और दूर की मंजिल तय करने की महत्वाकांक्षा जागी। भारतीय जनसंघ की विचारधारा देश की विचारधारा बन गयी।"

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने शांति के नाम पर युद्ध बंद करने की मांग की। लेकिन भारत ने अपनी भूमि पर पाकिस्तानी आक्रमण के बने रहते हुए युद्ध विराम से इन्कार कर दिया। 1949 में भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के आग्रह पर ही भारत ने युद्ध विराम किया था, लेकिन 16 वर्षों तक भारत की भूमि को पाकिस्तान ने दबाये रखा, संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कुछ नहीं किया। भारतीय जनसंघ ने 'गुलाम कश्मीर' को पूरी तौर पर मुक्त करवाये बिना युद्ध विराम स्वीकार न किया जाये, इसके लिए जन-दबाव को मुखरित बनाये रखा। देश में एक यौद्धिक जोश परिव्याप्त हो चुका था।

17 सितम्बर, 1965 को रूस के प्रधानमंत्री के आग्रह पर युद्ध विराम की घोषणा तथा ताशकंद में सोवियत संघ की मध्यस्थता में भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति का शिखर सम्मेलन तय हुआ। दीनदयाल उपाध्याय ने इस घोषणा का विरोध किया। श्री गुरुजी मा. स. गोलवलकर ने 'श्री शास्त्री ताशकंद न जाएं' इसका देश भर की सभाओं में बोलते हुए, बार-बार आग्रह किया। लेकिन जो होना था वो टाला नहीं जा सका। 10 जनवरी 1967 को ताशकंद घोषणा पर लाल बहादुर शास्त्री तथा पाकिस्तान के राष्ट्रपति मोहम्मद अयूब खान के हस्ताक्षर हुए। उस रात को प्रधानमंत्री शास्त्री का रहस्यपूर्ण ढंग से हृदयगति रूक कर देहावसान हो गया। घोषणा में यह लिखा था :

भारत के प्रधानमंत्री और पाकिस्तान के राष्ट्रपति सहमत हुए कि दोनों देशों के सशस्त्र सैनिक 5 अगस्त, 1965 से पूर्व स्थिति में वापस चले जायेंगे यहां वापसी का कार्य 25 फरवरी, 1966 के बाद नहीं होगा। (अर्थात् इसके पूर्व ही हो जाएगा)। दोनों पक्ष युद्ध विराम रेखा पर युद्ध विराम की शर्तों का पालन करेंगे।"

अर्थात् कश्मीर के जिस भारतीय भूभाग को मुक्त करवाया गया था, भारत उस भूभाग को पुनः पाकिस्तान के हवाले कर देगा। शास्त्री यदि जीवित भारत आते तो संभवतः भारतीय जनसंघ उनका काले झंडों से स्वागत करता, लेकिन उनके बलिदान से स्थिति बदल गयी। उपाध्याय ने ताशकंद घोषणा के खिलाफ 'विश्वासघात' नामक पुस्तक लिखी। ताशकंद घोषणा को अस्वीकार करने की मांग की। उपाध्याय इस बात से दुखी थे कि इतने बलिदान व राष्ट्रीय उत्साह के बावजूद भारत भूमि से पाकिस्तान का आक्रमण समाप्त नहीं किया जा सका। युद्धकाल में जिन लाल बहादुर शास्त्री को दीनदयाल उपाध्याय ने 'राष्ट्रीय नायक' का गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया था, ताशकंद-घोषणा के बाद 'जय जवान जय किसान' के संदर्भ में वे कहते हैं :

"जय जवान' का नारा हम ताशकंद में भूल गये और अमेरिकी गेहूं मिलते ही 'जय किसान' भी भूल गये। यह प्रवृति अच्छी नहीं है। कोई भी विदेशी सहायता बिना किसी शर्त के नहीं मिलती।"

वे भारत को परमाणु शक्ति संपन्न बनाना चाहते थे। उनका मत है कि हमारे अणुबम से न तो विश्व शांति को खतरा है और न ही हम विश्व शांति के ठेकेदार हैं, "विश्व को नष्ट करने के लिए जितने परमाणु बमों की आवश्यकता है, अमेरिका और रूस के पास उससे कहीं अधिक मात्रा में बम है; किन्तु अभी तक युद्ध नहीं हुआ। अतः कांग्रेस सरकार विश्व शांति का भार भगवान पर छोड़कर परमाणु शस्त्र निर्माण का कार्य प्रारंभ करे। (सौभाग्य से श्री दीनदयाल जी के अनुयायी श्री अटल बिहारी वाजपेयी 1998 में भारत के प्रधानमंत्री बने, विश्व शक्तियों को ठेंगा दिखाते हुए भारत को परमाणु शक्ति संपन्न बनाया)।

राज्य पुनर्गठन

देश की आन्तरिक अखण्डता के संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय मूलतः संघात्मक संविधान व्यवस्था के ही खिलाफ थे; वे चाहते थे कि भारत में विकेन्द्रिकृत 'एकात्म शासन' की व्यवस्था होनी चाहिए। संघात्मक ढांचे को स्वीकार करने के कारण यह दायित्व हमें ओढ़ना पड़ा कि हम संघ के सदस्यभूत राज्यों का निर्माण करें। भाषावार राज्य रचना को सिद्धांतः स्वीकार किया गया; इसी कारण अनेक कठिनाइयां आयीं। संघवाद व भाषा को राज्य रचना का आधार मानने के आलोचना करते हुए उपाध्याय लिखते हैं कि "एक प्रशासनिक इकाई के निर्माण में जिन तत्वों का महत्व है उनमें 'भाषा' भी एक है; किंतु यह नहीं माना जा सकता कि वह एकमेव कसौटी है। भाषा का प्रशासन में विशेषकर प्रजातंत्रीय प्रशासन में महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए सामान्यतः भाषाई सीमायें ही प्रदेशों की सीमा बन गयी है किंतु कुछ लोग भाषा का इतना अतिरेकी एवं एकात्मक विचार करते रहे हैं कि उससे 'उपराष्ट्रवाद' की बू आने लगती है; जनसंघ उसे उचित नहीं समझता।" अतः उन्होंने मांग की कि "एक कमीशन बैठाया जाए जो प्रांतों की पुनर्रचना करे यह कहना कि प्रांतों की भाषा अलग-अलग है, व संस्कृति भिन्न-भिन्न है एक सैद्धांतिक भूल है। साथ ही उपाध्याय को प्रादेशिक इकाईयों को 'राज्य' कहने में भी आपत्ति है। उनका मानना है कि भारत एक ही राज्य है, अनेक राज्यों का संघ नहीं। इसीलिए वे सुझाव देते हैं कि 'संघ राज्य' एवं 'राज्य' के स्थान पर क्रमशः 'केन्द्रिय शासन' और 'प्रदेश' शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिये। यह एकात्मक शासन की ओर एक कदम होगा। भारतीय जनसंघ के प्रथम कानपुर अधिवेशन में ही प्रादेशिक इकाईयों के पुनर्गठन' के लिए 'आयोग' की मांग करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया था।

1954 में 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की स्थापना हुयी। दीनदयाल उपाध्याय ने आयोग को एक विस्तृत ज्ञापन दिया जिसमें राज्य रचना के एक मात्र भाषा आधार को निरस्त कर अन्य व्यावहारिक आधारों की व्याख्या करने का आग्रह किया। भारतीय जनसंघ के प्रांतीयता व भाषावाद से निरपेक्ष पुनर्गठन नीति के विषय में वक्तव्य देते हुए उन्होंने कहा :

"अगर बम्बई में एक भी महाराष्ट्रीयन न हो तो भी बम्बई महाराष्ट्र में मिलाया जाना चाहिये। वैसे ही कलकत्ता में एक भी बंगाली न हो तो वह बंगाल का अंग है। हमें भौगोलिक दृष्टि से पुनर्गठन का विचार करना चाहिये मैं यह बात मानने को तैयार नहीं हूं कि वहां के लोग क्या कहते हैं? क्या हम बार-बार ऐसे छोटे-छोटे पहलुओं पर जनमत लेंगे? देश में एक ही राज्य चलेगा, वह आज नहीं तो कल बनेगा।"

देश भर में विभिन्न, समुदायों व दलों ने आयोग को बहुत ज्ञापन दिया। अपने अपने हिसाब से राज्यों के सीमा निर्धारण में अपना पक्ष प्रस्तुत किया। जब आयोग ने सरकार को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया तो जनसंघ ने प्रतिवेदन का स्वागत किया। उपाध्याय ने कहा,- हमने साधारणतः प्रतिवेदन का स्वागत ही किया है। कई महानुभावों ने तो यहां तक कहा है कि यह प्रतिवेदन तो मोटे तौर पर जनसंघ की सिफारिशों के अनुसार ही तैयार किया गया है।

दीनदयाल उपाध्याय का मत था कि आयोग के अभिप्रस्तावों के संबंध में जल्दी से जल्दी निर्णय करके उनका क्रियान्वित किया जाए।" लेकिन सरकार ने घोषणा की कि रिपोर्ट पर सरकारों व विधानमंडलों की राय ली जायेगी तथा अंतिम फैसले के लिए संसद के समक्ष उसे प्रस्तुत किया जाएगा। उपाध्याय राज्य सरकारों व विधानमंडलों की राय जानने की आवश्यकता नहीं समझते थे तथा चाहते थे कि 'संसद सर्वप्रभुता सम्पन्न संस्था है', उसी को निर्णय लेना चाहिये। परिणामतः देश में प्रांतीयतावादी वीभत्स बहस हुयी, दंगों और हिंसक आंकलनों की छाया में भारत के तथाकथित र राज्यों' का निर्माण हुआ।

भाषा-नीति

भारत जैसे बहुलता संपन्न समाज एवं विस्तृत भू-प्रदेश की भाषा-नीति का निर्धारण एक विकट समस्या है। संपूर्ण भारत की कई एक भाषा इतिहास में कभी रही है क्या? इसका उत्तर सरल नहीं है। भाषा विज्ञान के आधार आर्यभाषा एवं द्रविड़भाषा का जो लोग विवेचन करते हैं वह दक्षिण की भाषाओं को संस्कृतेत्तर भाषा मानते हैं; लेकिन दीनदयाल इस संदर्भ में पूरी दृढ़ता से विश्वास करते हैं कि संस्कृत संपूर्ण भारत के विद्वज्जन की व्यवहार भाषा थी तथा दक्षिण की भाषा संस्कृतेत्तर नहीं है।

मध्यकालीन आक्रमणों के संपर्क से उत्पन्न अरबी लिपि में लिखी जाने वाली पर्शियन भाषाधारित उर्दू और अंग्रेजों के कारण आरोपित अंग्रेजी संपर्क भाषा, दोनों को वे राष्ट्रीय स्वाभिमान को आहत करने वाली भाषायें मानते थे। संस्कृतिनिष्ठ हिन्दी को भारत की असंदिग्ध राष्ट्र भाषा बनाना चाहते थे; लेकिन प्रादेशिक भाषाओं के वास्तविक स्थिति और अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण यह सरल नहीं था। उपाध्याय अपने जीवनकाल में चल रहे भाषा विवाद में सक्रियतापूर्वक शामिल रहकर प्रखरता एवं तर्कपूर्वक अपना मत प्रतिपादित करते रहे। अनेक मुद्दों पर व्यावहारिक समझौते भी उन्होंने किए। भाषा को राजनीति का मुद्दा बना देने से भाषा संदर्भित राष्ट्रीय स्वाभिमान की क्षति हुई तथा हिन्दी के विकास में बाधा उत्पन्न हुई। उपाध्याय कहते हैं, "राजनीतिज्ञ भाषा के नाम पर लड़ सकते हैं, पर भाषा का सृजन नहीं कर सकते।"

हिन्दी की असमर्थता तथा अंग्रेजी की व्यावहारिक सार्वेदेशिकता के संदर्भ में दीनदयालजी अपनी स्वराज्यवादी भावनाओं को प्रस्तुत करते हुए प्रतिपादित करते हैं कि "हमारे स्वतंत्र्य संग्राम के प्रारंभिक दिनों में ब्रिटिश समर्थक तत्वों को हमारा सामान्य उत्तर होता था कि 'स्वराज्य' (सेल्फरूल) की प्यास को 'सुराज्य' (गुडरूल) से नहीं बुझाया जा सकता। आज भी 'स्वभाषा' की आवश्यकता की पूर्ति 'सुभाषा' से नहीं हो सकती।"

वे सम्पर्क अथवा राष्ट्रीय भाषा के संदर्भ को राष्ट्रीय अखंडता के साथ ही जोड़ते थे। अतः उनका मत था कि भारत की प्राचीनतम भाषा संस्कृत को संवैधानिक राष्ट्र भाषा का दर्जा दिया जाए तथा हिन्दी को राष्ट्र की संपर्क भाषा के रूप में विकसित किया जाए। वे हिन्दी पक्ष के प्रबल प्रवक्ता थे, लेकिन 1957 में बेंगलोर तथा एक दशक बाद 1967 में कालीकट के अधिवेशनों ने उन्हें हिन्दी की सीमाओं का ऐहसास करवाया। भाषा का आग्रह यदि भारत को उत्तर और दक्षिण में विभक्त कर दे, तो दीनदयाल जी की राष्ट्रीय अखंडता की राजनीति का वह आग्रह नहीं बन सकती। अतः अंग्रेजी का विकल्प भारतीय भाषाओं में तलाशने की उनकी आकांक्षा बढ़ी। राष्ट्रीय अखंडता की राजनीति के तौर पर भाषा नीति को वह सांगोपांग ढंग से तराश पाते, नियति ने उन्हें अकाल ही हम से छीन लिया।

सन्दर्भग्रन्थाः -

1. कुलकर्णी शरद अनन्त (1987) 'पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन' खण्ड 4 नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन
2. पिलानी शेखावटी जनसंघ सम्मेलन में पं०दीनदयाल उपाध्याय जी का उद्घाटन भाषण, पाँचजन्य 12 दिसम्बर 1955
3. पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनीतिक चिंतन पृष्ठ संख्या 29
4. पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन पृष्ठ संख्या 58

5. पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनैतिक चिन्तन पृष्ठ संख्या 38
6. विजयवाड़ा अधिवेशन में दिया भाषण 1965
7. पं. दीनदयाल उपाध्याय, 2007, "विकेन्द्रिकृत अर्थव्यवस्था" लखनऊ पृष्ठ सख्या,-78
8. एकात्मता स्त्रोत्रम्, (लोक हित प्रकाशन, लखनऊ 4)
9. महेश चन्द शर्मा, दीनदयाल उपाध्यायः कर्तव्य एवं विचार, प्रभात पब्लिकेषन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 250-258
10. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद, प्रभात पब्लिकेशन, 2016, पृष्ठ 80-82

.